2 मई 2009, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

जगत में जो कुछ भी श्रेय विद्यमान है, अच्छाइयाँ कायम हैं; वे सब अध्यात्मधारा के अविरल प्रवाह का ही परिणाम हैं।
ह्न सत्य की खोज, पृष्ठ ह्न 102

वर्ष : 32, अंक : 3 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये
मई (प्रथम), 2009 प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

कानजीस्वामी की जन्म जयंती

1. जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 26 अप्रैल को आध्यात्मिक सत्पुरुषश्री कानजीस्वामी की जन्म जयन्ती के अवसर पर प्रात: श्री दिलीपभाई शाह मुम्बई की अध्यक्षता में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी में पण्डित रमेशचन्दजी शास्त्री 'दाऊ' ने श्री कानजीस्वामी के जीवन में घटी अनेक घटनाओं को उपस्थित जन समुदाय के सामने प्रस्तुत किया। पण्डित मनीषजी शास्त्री खड़ैरी ने उनके द्वारा उद्घाटित आध्यात्मिक चिंतन को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते हुये अपने वर्तमान जीवन में उसकी उपयोगिता को प्रस्तुत किया साथ ही श्री हुकमीचन्दजी जैन ने गुरुदेवश्री का परिचय एवं उनके द्वारा दिये गये विशिष्ट योगदान का स्मरण कराया।

सभा का संचालन करते हुये पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री रायपुर ने गुरुदेवश्री के जीवन में चारों अनुयोगों का सुन्दर समन्वय घटित किया। आयोजित सभा के पूर्व प्रात: पूजन एवं पण्डित प्रवीणजी के प्रवचन का लाभ मिला।

2. दिल्ली : यहाँ श्री आत्म साधना केन्द्र में दिनांक 5 से 12 अप्रैल तक आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की 120 वीं जन्मजयंती 'उपकार दिवस' के रूप में आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर पूर्वक मनाई गई।

इस अवसर पर बाल ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, ब्र. अमितजी विदिशा, विदुषी राजकुमारीजी दिल्ली आदि के साथ ही पण्डित संजयजी सेठी जयपुर, पण्डित मनोजजी शास्त्री करेली, पण्डित राकेशजी शास्त्री नांगलोई, पण्डित संदीपजी शास्त्री बाँसवाड़ा, पण्डित अमितजी शास्त्री फुटेरा, पण्डित श्रेयांसजी शास्त्री अभाना, पण्डित निकलंकजी शास्त्री कोटा, विदुषी ऋतुजी जैन खेकड़ा का भी सत्समागम प्राप्त हुआ।

इस प्रसंग पर आयोजित श्री 170 तीर्थंकर मंडल विधान के समस्त कार्यक्रम बाल ब्र. पण्डित जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली के कुशल निर्देशन में पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल, पण्डित कांतिकुमारजी इन्दौर एवं पण्डित रमेशजी इन्दौर द्वारा सम्पन्न कराये गये।

आर्ट ऑफ हैप्पी लिविंग सेमीनार सम्पन्न

मुम्बई : यहाँ दिनांक 12 अप्रैल 09 को जुहू जागृति सेन्टर में दिव्यध्वनि प्रचार-प्रसार ट्रस्ट द्वारा आर्ट ऑफ हैप्पी लिविंग सेमीनार आयोजित किया गया। डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के परामर्श एवं डॉ. शुद्धात्मप्रभाजी टड़ैया के निर्देशन में आयोजित यह सेमीनार जैन जीवनदर्शन की वैज्ञानिकता व उपयोगिता को युवा-युवतियों को समझाने का एक सुन्दर प्रयास रहा।

मंगलाचरण एवं अतिथियों के सम्मान के बाद प्रारंभ हुये इस कार्यक्रम में जैनधर्म के गूढ़ रहस्यों को काफी सरल एवं युवा वर्ग की भाषा में समझाया गया। विद्वत्रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया ने क्या हम सुखी हैं या दु:खी है? इस विषय को अनेक उदाहरणों द्वारा रोचक शैली में समझाकर सिद्ध किया कि दु:खों के चक्र का अंत इच्छाओं पर अंकुश लगा कर ही किया जा सकता है। इस अवसर पर आपके द्वारा लिखित पुस्तक आगम प्रवेश भाग-2 व 3 का विमोचन भी किया गया।

युवा विद्वान पण्डित अनेकान्तजी भारिल्ल ने समझाया कि जैनदर्शन के सिद्धान्तों को सही रूप से समझकर ही हम वास्तविक जीवन को अनेक परेशानियों व तनाव से बचा सकते हैं। आपने बताया कि जैनधर्म के सिद्धान्त ही हमें सकारात्मक विचारों की ऊर्जा से भरते हैं, साथ ही कोमल व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक भी होते हैं। अनेकान्त के सिद्धान्त के द्वारा ही हम लौकिक जीवन में भी बिना किसी बहस के साथ सभी के साथ तालमेल बिठाने में कामयाब हो सकते हैं।

प्रखर ओजस्वी वक्ता श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने अपनी विशिष्ट शैली द्वारा वस्तुस्वातंत्र्य, अकर्ताभाव जैसे अति कठिन समझे जानेवाले विषयों को भी सरल व रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। आपने बताया कि इन भावों का फल क्या होगा का स्वर्णिम सूत्र जीवन में अपनाने से हम पाप बंध से बच सकेंगे एवं तनावमुक्त सार्थक जीवन जी सकेंगे।

अतिज्ञानवर्धक एवं रोचक इस सेमीनार में लोगों की शंकाओं का समाधान भी उपरोक्त सभी विद्वान वक्ताओं एवं विशिष्ट अतिथि कु.जिनल शाह द्वारा किया गया।

सम्पादकीय – 27

चलते–फिरते सिद्धों से गुरु

ह्न पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे ...)

छटवाँ ध्यान तप :ह्न 'ध्यान का स्वरूप एक ज्ञेय में ज्ञान का एकाग्र होना है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा भी है ह्न 'एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानं' जो पुरुष धर्म में एकाग्रचित्त करता है, उस काल में इन्द्रिय–विषयों का वेदन नहीं करता, उसे ही धर्मध्यान होता है। उसका मूल कारण संसार, देह, भोग से वैराग्य है। कारण कि वैराग्य के बिना धर्म में चित्त स्थिर नहीं होता।

आत्मा को 'स्व' के प्रति अपेक्षा होने पर, 'पर' की उपेक्षा हुए बिना नहीं रहती ह्न ऐसे 'पर' की उपेक्षा करनेवाले को ही अन्तरंग में स्थिरता होती है।धर्मध्यानवाला विकार में एकाग्र नहीं होता, अपितु अन्दर में जो स्वयं एक ज्ञानमात्र स्वभाव है, उसे लक्ष्य में लेता है।

धर्मध्यान के चार भेद हैं ह्न आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय एवं संस्थानविचय।

आज्ञाविचय धर्मध्यान में उन सूक्ष्म, अन्तरित, दूरवर्ती पदार्थों की श्रद्धा आगम के आधार पर करके ज्ञान व वैराग्य की वृद्धि के लिए चिन्तवन करना। जैसे ह्न आलू आदि जमीकन्द में अनन्त सूक्ष्म जीव होते हैं ह्न ऐसा आगम में कहा है, उन्हें गिने नहीं जा सकते हैं। सुमेरू पर्वत १ लाख योजन का है, उसे नापा नहीं जा सकता। इनका तो जिनेन्द्र की आज्ञानुसार ही जाना जाता है। इनका चिन्तवन ही आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

अपायविचय धर्मध्यान में यह चिन्तन चलता है कि कर्मबन्धन से छूटने का क्या उपाय है? अर्थात् कर्मों से छूटने के उपायों का चिन्तन ही अपायविचय है।

विपाकविचय में कर्मों के फल का चिन्तन करते हुए साम्यभाव हो जाता है। तथा ह्न

संस्थानविचय धर्मध्यान में लोकभावना के आधार से समताभावी होना संस्थानविचय है।

ये सभी भेद व्यवहार धर्मध्यान के हैं, जो शुभभावरूप होते हैं।

निश्चय धर्मध्यान उक्त व्यवहार धर्मध्यानपूर्वक आत्मा के स्वभाव के आश्रय से वीतराग भाव रूप परिणमन करना है। कहा भी है ह्न

'राग–द्वेष त्याग कर साम्यभाव से यथास्थित जीवादि पदार्थों का चिन्तवन करना धर्मध्यान है।[१]'

'पंचपरमेष्ठी की भक्ति से तदनुकूल शुभ अनुष्ठान व पूजा–दान आदि में बहिरंग धर्मध्यान होता है।[२]'

१. ज्ञानसार–१० २. पंचास्तिकाय तात्पर्यवृत्ति १५०/२१७/१६

धर्मध्यान के चिह्न :ह्न आगम उपदेश व जिज्ञासा के अनुसार कहे गये पदार्थों का जो श्रद्धान होता है, वह धर्मध्यान का लिंग (पहचान) है। जिनश्रुत का गुणगान कीर्तन, प्रशंसा, विनय, श्रुतशील व संयमरत रहना ये सब बातें धर्मध्यान में होती हैं।[१]

बाह्यतप की व्याख्या करते हुए आचार्यश्री ने कहा ह्न

पहला अनशनतप :ह्न इन्द्रियों के विषयों का त्याग राग–द्वेष रहित आत्मस्वरूप में बसने या लीन होने से खाद्य, स्वाद्य, लेह और पेय ह्न इन चार प्रकार के आहार का विधिपूर्वक त्याग करना उपवास या अनशन कहलाता है।

'मन और इन्द्रियों को जीतकर इहभव तथा परभव के विषय–सुखों की अपेक्षा रहित होना, साथ ही आत्मध्यान और स्वाध्याय में लीन रहकर कर्मक्षय के लिए एक दिन, दो दिन इत्यादिरूप काल–परिमाण सहित सहजभाव से किया गया आहार–त्याग अनशनतप है।[२]'

'मुनीन्द्रों ने संक्षेप में इन्द्रियों को विषयों में न जाने देने को, मन को अपने आत्मस्वरूप में लगाने को उपवास कहा है; इसलिए जितेन्द्रिय आहार करते हुए भी उपवास सहित ही होते हैं।[३]'

'चार प्रकार के आहारों का त्याग करना अनशन है। मैं भोजन करूँ, भोजन कराऊँ, भोजन करनेवाले को अनुमति दूँ ह्न इसतरह मन में संकल्प करना; मैं आहार लेता हूँ, तुम भोजन करो, तुम भोजन पकाओ ह्न ऐसा वचन से कहना; चार प्रकार के आहार को संकल्पपूर्वक शरीर से ग्रहण करना, हाथ से इशारा करके दूसरे को ग्रहण करने में प्रवृत्त करना, आहार ग्रहण करने के कार्य में शरीर से सम्मति देना ह्न ऐसी जो मन, वचन, काय की क्रियाएँ, उन सबका त्याग करना अनशन है।[४]'

'कषायविषयाहारो, त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः, शेषं लंघनकं विदुः।।

जहाँ कषाय, विषय और आहार का त्याग किया जाता है, उसे उपवास जानना; शेष को श्रीगुरु लङ्घन कहते हैं।[५]'

दूसरा अवमौदर्य तप :ह्न तृप्ति के लिए पर्याप्त भोजन में से चतुर्थांश या दो–चार ग्रास कम खाना अवमौदर्य या ऊनोदर है।

'पुरुष मुनिराज का प्राकृतिक आहार बत्तीस और स्त्रियों (आर्यिकाओं) का अट्ठाईस ग्रास (कवल) प्रमाण होता है। उनमें से एक–एक ग्रास कम करते हुए, जब तक एक ग्रास या कण मात्र न रह जाय, तब तक अल्प आहार ग्रहण करना अवमौदर्य तप है।[६]'

'संयम की वृद्धि, निद्रा–आलस्य का नाश, वात–पित्त–कफ आदि दोष का प्रशमन, सन्तोष, स्वाध्याय आदि सुखपूर्वक होवें। इसके लिए थोड़ा आहार लेना अवमौदर्य है।[७]'

१.धवला पु.३/५/४/२७/५४/५५ २. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ४४०
३. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ४३० ४.भगवती आराधना टीका, गाथा–६
५. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २३१ ६. मूलाचार, गाथा ३५० टीका
७. सर्वार्थसिद्धि वचनिका, पृष्ठ ३६३

'जो पित्त के प्रकोपवश उपवास करने में असमर्थ हैं, उन्हें आधे आहार होने की अपेक्षा पूरा निराहार उपवास करने में अधिक थकान आती है। जो अपने उदर में कृमि की उत्पत्ति का निरोध करना चाहते हैं और जो व्याधिजन्य वेदना के निमित्तभूत अतिमात्रा में भोजन कर लेने से स्वाध्याय के भंग होने का भय करते हैं, उन्हें यह अवमौदर्य तप करना चाहिए।[१]'

'जो मुनि कीर्ति के निमित्त, मायाचारी से अल्प भोजन करता है, उसके अवमौदर्य तप निष्फल है।[२]'

तीसरा वृत्तिपरिसंख्यान तप :ह्न आशा–तृष्णा का दमन करने के लिए एक घर, सात घर, एक–दो गली, अर्द्धग्राम, दाता आदि प्रवृत्ति का विधान या भोजन के विषय में होनेवाले संकल्प–विकल्प और चिन्ताओं का नियंत्रण करना वृत्ति है, उसमें परिसंख्यान अर्थात् मर्यादा करना, गणना करना वृत्तिपरिसंख्यान नामक तप कहा जाता है।'

वृत्तिपरिसंख्यान तप के उद्देश्य इसप्रकार हैं ह्न

(१) 'इन्द्रिय और मन का निग्रह (२) भोजनादि के प्रति रागवृत्ति को दूर करना (३) आशा–तृष्णा की निवृत्ति, (४) धैर्य गुण की वृद्धि, (५) भूख–प्यास सहन करने का अभ्यास और (६) अपनी वृत्तियों पर कठोर संयम।[३]'

चौथा रसपरित्याग तप :ह्न 'दूध, दही, घी, तेल, गुड़ और लवण ह्न इन सब रसों का त्याग करना अथवा एक–एक रस का त्याग करना अथवा तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा ह्न इन पाँच प्रकार के रसों का एकदेश या सर्वदेश त्याग करना। रस सम्बन्धी लम्पटता को मन, वचन और शरीर के संकल्प से त्यागना रसपरित्याग तप है।

जो मुनि संसार के दुःख से तप्तायमान होकर ऐसे विचार करता है कि इन्द्रियों के विषय विषसमान हैं; विष खाने पर तो एक ही बार मरता है, परन्तु विषयसेवन करने पर बहुत जन्म–मरण होते हैं ह्न ऐसा विचार कर जो नीरस भोजन करता है, उसके रसपरित्याग तप निर्मल होता है।[४]

(१) 'इन्द्रियों के मद का निग्रह करना, (२) निद्रा को जीतना, (३) स्वाध्याय आदि की सिद्धि, (४) प्राणी संयम तथा इन्द्रिय संयम की प्राप्ति, (५) असंयम का निरोध, तथा (६) रसना–इन्द्रिय की स्वादवृत्ति पर विजय की साधना इस व्रत का उद्देश्य है।[५]'

पाँचवा विविक्तशय्यासन तप :– 'अप्रमादी मुनि द्वारा सोने, बैठने व ठहरने के लिए तिर्यंचनी, मनुष्यनी और गृहस्थों के मकानों में वास करने का त्याग करना विविक्तशय्यासन तप है।

(१) 'सुखपूर्वक आत्मस्वरूप में लीन होना, (२) मन–वचन–काय की अशुभवृत्तियों को रोकना, (३) ब्रह्मचर्य का पालन, (४) ध्यान और स्वाध्याय में वृद्धिकरण (५) गमनागमन का अभाव होने से जीवों की रक्षा और (६) कष्टसहिष्णुता। इसके चिन्ह हैं।'

१. धवला १३/५, ४, २६/५६ २. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ४४२
३. तत्त्वार्थवार्तिक, सूत्र ९/१९ ४.राजवार्तिक, धवला आदि आधार से
५. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ४४८

छठवाँ कायक्लेश तप :ह्न जो मुनि परीषहों एवं दुःसह उपसर्ग को जीतनेवाला एवं बात करने वाला है, आताप–शीत–वात पीड़ित होकर भी खेद को प्राप्त नहीं होता है। चित्त में क्षोभ अर्थात् क्लेश भी नहीं करता है, उस मुनि को कायक्लेश नामक तप होता है। खड़े रहना, एक करवट से मृत की तरह सोना, वीरासन आदि से बैठना इत्यादि अनेक प्रकार से शास्त्रानुसार विवेकपूर्वक आतापनादि द्वारा शरीर को कष्ट देना कायक्लेश तप है।[३]

कायक्लेश तप करने से यह लाभ है कि ह्न (१) देह के प्रति उपेक्षाभाव होता है, (२) परीषहजय करने की क्षमता होती है, (३) शारीरिक सुख की अभिलाषा का अभाव होता है, (४) शारीरिक कष्ट सहने की सहनशक्ति आती है तथा जिन मार्ग की प्रभावना होती है।[४]'

तात्पर्य यह है कि ह्न शीत, वात, आतप, बहुत उपवास, क्षुधा–तृषा आदि बाधाओं को सहने हेतु वीर आदि आसनों से ध्यान का अभ्यास किया जाता है; क्योंकि जिसने शीतबाधा आदि और उपवास आदि की बाधा का अभ्यास नहीं किया है और मरणान्तिक असाता आदि से खिन्न हुआ है, उसके ध्यान नहीं बन सकता है, अतः उस समय मुनि यह चिन्तन करने लगते हैं कि जो परीषह उपसर्ग आदि हैं, वे आत्मा में नहीं, अपितु शरीर में होते हैं और यह शरीर मेरा नहीं है। यही चिन्तवन कायक्लेश तप का आध्यात्मिक आधार है, इससे देहासक्ति और देहाभ्यास को कम करने का बल प्राप्त होता है।'

'कायक्लेश तप करने से अकस्मात् शारीरिक कष्ट आने पर सहनशीलता बनी रहती है। विषय–सुखों में आसक्ति नहीं होती है तथा धर्म की प्रभावना होती है।

आत्मसाधना करते हुए, यदि अनेक प्रकार के कष्ट आ पड़ें तो स्वरूपानुभव के बल से उनसे निरपेक्ष रहकर अनवरतरूप से आत्मसाधना करते रहना कायक्लेश तप है। कायक्लेश का मुख्य प्रयोजन शरीर को कष्ट देना न होकर शारीरिक कष्ट की उपेक्षावृत्ति एवं निजस्वरूप की अपेक्षावृत्ति है।

'बाह्य तप श्रावकों और मुनियों को सन्मार्ग में तत्पर बनाये रखने के अद्वितीय साधन हैं। श्रमण को जितेन्द्रिय बनाने में बाह्य तप की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मन का संयमन तो सभी तपों में होता ही है। बाह्य तप पंचेन्द्रिय विषय–सुखों के प्रति उदासीनता लाने, कष्टसहिष्णु बनने, आलस्य दूर करने, शरीर से ममत्वभाव दूर करने तथा आत्म–कल्याण में प्रवृत्त रहने में अत्यधिक सहयोगी बनते हैं।'

'अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान और रसपरित्याग ह्न इन चार तपों के द्वारा मुख्यरूप से रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त की जाती है। कायक्लेश और विविक्तशय्यासन ह्न ये दो तप स्पर्शन, घ्राण, चक्षु और कर्णेन्द्रिय ह्न इन चार इन्द्रियों तथा इनके विषयों के प्रति अनासक्त बनाने में सहयोग करते हैं।'

इसप्रकार १२ तपों की चर्चा हुई। शेष फिर। ॐ नमः। ●

३. मूलाचार, गाथा ३५७ ४. तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ६२६

डॉ. भारिल्ल की कहानियों का प्रतिपाद्य

ह्न अरुणकुमार जैन
शास्त्री, एम.ए., बी.एड., वरिष्ठ अध्यापक, बड़ामलहरा, छतरपुर

जैनदर्शन के मूर्धन्य मनीषी और अध्यात्म की नींव पर अपनी कहानियों को स्थापित करने वाले आध्यात्मिक चेतना के प्रचेता कहानीकार डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने श्रेष्ठ साहित्य सृजन करके हिन्दी साहित्य को अमूल्य अवदान दिया है।

इन्होंने आध्यात्मिक कहानियों को हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित कर कहानीकारों को एक नई दिशा दी है। इनकी कहानियों के मूल प्रतिपाद्य पर विचार अपेक्षित हैं।

जिसप्रकार कहानीकार यशपाल और जैनेन्द्र की कहानियाँ मनोवैज्ञानिकता की पृष्ठभूमि पर अवतरित हैं; उसीप्रकार डॉ. भारिल्ल की कहानियाँ आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि पर अवतरित हुई है।

वस्तुतः यदि अध्यात्म को इनकी कहानियों का मूल प्राणतत्त्व कह दिया जाये तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आध्यात्मिकता के परिप्रेक्ष्य में ही मानवीय संवेदना और सहानुभूति, कर्त्तव्यबोध एवं नैतिक सदाचार, जैनदर्शन के दार्शनिक तत्त्व, बुद्धि और विवेक ह्न इत्यादि अनेक उदात्त मूल्यों की अभिव्यक्ति भी सरल, सुबोध, रोचक और तार्किक ढंग से की गई है।

कहानीकार ने उपर्युक्त सभी मूल्यों के प्रतिपादन में अपना हार्द प्रकट कर दिया है।

डॉ. भारिल्ल की कहानियों के प्रतिपाद्य को निम्नानुसार देख सकते हैं ह्न

१. आध्यात्मिकता ह्न डॉ. भारिल्ल की कहानियों का संदर्शन करने पर प्रतीत होता है कि उन्होंने आध्यात्मिकता का कोना–कोना झाँका है, आध्यात्मिक चेतना का सजीव चित्र उपस्थित किया है। वे अपने कहानी संग्रह '**आप कुछ भी कहो**' की प्रस्तावना में स्वयं लिखते हैं ह्न **''कथानक तो मात्र बहाना है, मूल प्रतिपाद्य तो अध्यात्म ही है।**''

डॉ. भारिल्ल को अपनी कहानियों द्वारा अध्यात्म के स्वर मुखरित करना ही अभीष्ट है, वे '**आप कुछ भी कहो**' कहानी में लिखते हैं ह्न **''सभी आत्मा स्वयं परमात्मा हैं, परमात्मा कोई अलग नहीं होते। स्वभाव से तो सभी आत्माएँ स्वयं परमात्मा ही हैं, पर अपने आत्मस्वभाव को भूल जाने के कारण दीन–हीन बन रहे हैं। जो अपने को जानते हैं, पहिचानते हैं और अपने में ही जम जाते हैं, रम जाते हैं, समा जाते हैं; वे पर्याय में भी परमात्मा बन जाते हैं।**''

परमार्थतः कहानीकार का मूल उद्देश्य भी भौतिक जगत के स्थान पर अध्यात्म की प्रतिष्ठा करना ही है; अतः उन्होंने आत्मानुशासन, आत्मोन्नति तथा आत्मानुभव पर बल दिया है; क्योंकि सांसारिक दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति ही कहानीकार का उच्चादर्श है। वे नश्वर देह के बारे में लिखते हैं ह्न **''यह तो जड़–पुद्गल का परिणमन है। इसमें हमारा क्या लेना–देना? जब तक संयोग है, तब तक रहेगा। पुण्य–पाप के अनुसार इसका जैसा परिणमन होना होगा, होता रहेगा। हम तो इससे भिन्न ज्ञान के घनपिण्ड आनन्द के कन्द चेतन तत्त्व हैं, उसमें ही मग्न रहते हैं।**''

कहानीकार डॉ. भारिल्लजी ने अध्यात्म का सर्वांङ्ग प्रतिपादन अपनी कहानियों में किया है। उनके अनुसार शरीर के विकृत हो जाने पर, कुरूप हो जाने पर भी आत्मा का सौन्दर्य नष्ट नहीं होता है; क्योंकि शरीर और आत्मा एक साथ दिखाई देने पर भी वस्तुतः भिन्न–भिन्न हैं। जैसे किसी सरोवर के जल की सतह पर व्याप्त काई (शैवाल) के कारण वह जल मलिन प्रतीत होता है; परन्तु उस काई (शैवाल) के हटाने पर उसके अंदर पूर्ण स्वच्छ जल विद्यमान रहता है; इसीप्रकार इस दृश्यमान शरीर में कोढ़ इत्यादि व्याधियाँ हो जाने पर भी आत्मा उससे अलिप्त रहता है। वे '**आप कुछ भी कहो**' कहानी में ऋषिराज के माध्यम से कहते हैं ह्न **''हम नहीं, हमारी देह (शरीर) अवश्य कोढ़ी थी। हम तो देह–देवल (देवालय) में विराजमान भगवान आत्मा हैं। आप भी देह–देवल में विराजमान भगवान आत्मा ही हैं।**''

२. दार्शनिकता ह्न डॉ. भारिल्ल की कहानियों में जैनदर्शन के गूढ़ एवं जटिल सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी सहजता तथा सरलता के साथ हुआ है। वे क्रमबद्धपर्याय को स्पष्ट करते हुए '**अभागा भरत**' कहानी में लिखते हैं ह्न **''पर्यायों के क्रमनियमित परिणमन को कौन टाल सकता है? अपने नियतक्रम में घटनेवाली घटनाओं को साक्षीभाव से स्वीकार करना ही दृष्टिवन्त का कर्त्तव्य है।**''

जैनदर्शन के अनुसार पुण्य और पाप दोनों ही बन्धन के कारण हैं, बेड़ियों के समान हैं; क्योंकि दोनों ही आत्मा को बन्धन में डालते हैं, संसार में ही भ्रमण कराते हैं, अतः त्याज्य हैं। इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. भारिल्ल पहली कहानी में लिखते हैं ह्न **''पुण्य और पाप दोनों ही बन्धन के कारण हैं। पाप यदि लोहे की बेड़ी है तो पुण्य सोने की । बेड़ियाँ दोनों ही हैं, बेड़ियाँ बन्धन ही हैं।**''

भगवान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहानीकार ने प्रतिपादित किया है कि ह्न **''जो जगत् को साक्षीभाव से अप्रभावित रहकर देख सके, जान सके, वस्तुतः वही भगवान है।''** तथा **''भगवान जगत् के ज्ञाता–दृष्टा हैं, कर्त्ता–धर्त्ता नहीं।''**

कहानीकार ने **'गाँठ खोल देखी नहीं'** कहानी में भी गूढ़ दार्शनिक तत्त्व को प्रतिपादित किया है। इसमें अचेतन लाल (हीरे) के माध्यम से चेतन लाल (आत्मा) की अभिव्यक्ति हुई है। वे लिखते हैं ह्न **''आज तक सबने अचेतन लालों को ही परखा है, चेतन लालों को नहीं परखा। मैंने तो चेतन लाल को ही परखा था, उसी की कीमत बताई थी।''**

इसतरह जैनदर्शन के सिद्धान्तों का प्रचुर प्रतिपादन इनकी कहानियों में हुआ है।

३. मनोवैज्ञानिकता ह्न जैनदर्शन तथा अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में मनोविज्ञान जैसे विषय को प्रतिपादित करने में डॉ. भारिल्लजी अत्यन्त पटु हैं। वे **'अक्षम्य अपराध'** कहानी में अपमानित मानी व्यक्ति की प्रवृत्ति का चित्रण करते हुए लिखते हैं ह्न **''अपमानित मानी, क्रोधित भुजंग एवं क्षुधातुर मृगराज से भी अधिक दुःसाहसी हो जाता है। आज संघ खतरे में है ह्न कहते–कहते आचार्य श्री और भी अधिक गम्भीर हो गए।''**

यथार्थतः डॉ. भारिल्लजी मनोविज्ञान के सच्चे पारखी हैं, वे **'तिरिया–चरित्तर'** कहानी में लिखते हैं ह्न **''प्रशंसा मानव स्वभाव की एक ऐसी कमजोरी है कि जिससे बड़े–बड़े ज्ञानी भी नहीं बच पाते हैं। निन्दा की आँच भी जिसे पिघला नहीं पाती, प्रशंसा की ठंडक उसे क्षार–क्षार कर देती है।''**

४. बुद्धि और विवेक ह्न अध्यात्म को स्पष्ट करते हुए डॉ. भारिल्लजी ने बुद्धि और विवेक जैसे तत्त्वों को भी प्रतिपादित किया है। **'जरा सा अविवेक'** कहानी में कहानीकार सेठ की पत्नी के माध्यम से कहते हैं ह्न **''हे भगवन्! मेरे जरा से अविवेक ने क्या अनर्थ कर डाला? मैंने एक ज्ञानी की विराधना कर अनन्त ज्ञानियों की विराधना का महापाप तो किया ही, साथ में अपने पति की आन्तरिक शान्ति को भंग कर उनका जीना भी दूभर कर दिया।''**

कहानीकार के अनुसार विवेक भी विनय और मर्यादा की परिधि को तोड़ने वाला नहीं होना चाहिए ह्न **''यद्यपि विवेक का स्थान सर्वोपरि है; किन्तु वह विनय और मर्यादा को भंग करने वाला नहीं होना चाहिए। विवेक के नाम पर कुछ भी कर डालना तो महापाप है; क्योंकि निरंकुश विवेक पूर्वजों से प्राप्त श्रुतपरंपरा के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।''**

५. अन्य ह्न डॉ. भारिल्लजी की कहानियों में उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य अनेक तथ्यों का प्रतिपादन हुआ है। वे इच्छाओं के बारे में लिखते हैं :ह्न **''आपके चाहने या न चाहने से क्या होता है? सौभाग्य का उदय हो तो लाभ मिलता ही है।''**

तथा **''चाह आज तक किसी की पूरी नहीं हुई है।''**

भवितव्यता (होनहार) का प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं ह्न **''बुद्धि भी भवितव्य का अनुसरण करती है, जब खोटा समय आता है तो बड़े–बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि पर भी पत्थर पड़ जाते हैं।''**

आध्यात्मिक कहानीकार होने पर भी 'राजनीति' जैसे तत्त्वों की सुन्दर विवेचना भी इनकी कहानियों में परिलक्षित होती है ह्न

''राजनीति अपना रस सब जगह से ग्रहण करती है? देश की अखण्डता के लिए मात्र जमीन ही जीतना जरूरी नहीं होता, जनता का दिल भी जीतना होता है।''

भगवान बनने का उपाय प्रतिपादित करते हुए कहानीकार लिखते हैं ह्न **''भगवान बनने का उपाय भी जगत से अलिप्त रहकर साक्षीभाव से ज्ञाता–दृष्टा बने रहना ही है।''**

निष्कर्ष ह्न

इसप्रकार कहानीकार डॉ. भारिल्ल की कहानियों का मूल प्रतिपाद्य अध्यात्म होते हुए भी उनमें जैनदर्शन के सिद्धान्तों का सुन्दर चित्रण है; साथ ही सदाचार, नैतिक मानवीय मूल्य और नारी चेतना के स्वर मुखरित करने के कारण डॉ. भारिल्ल ने हिन्दी कथा साहित्य को एक बहुमूल्य निधि दी है, नई दृष्टि दी है।

अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में विविध तथ्यों को कहानियों में समाहित करने के कारण हिन्दी साहित्य जगत् कहानीकार डॉ. भारिल्ल का सदैव ऋणी रहेगा। ●

पाठकों के पत्र

वीतराग विज्ञान में प्रकाशित लेखांश **'जिनागम के आलोक में ध्यान'** को पढ़कर दलपतपुर – सागर (म.प्र.) से श्री विनोदजी मोदी लिखते हैं कि ह्न निश्चित ही यह पुस्तक बहुमूल्य ही है, कीमती हीरा है; परन्तु तराशे बिना जगत के सामने कुछ भी नहीं है, शब्दों का ओछापन हीरे की चमक को कैसे गा सकता है, वह तो जानकारों की चमक का नगीना है। जिनागम में ध्यान विषय पर लेखनी चलाकर आपने ध्यान का सम्यक् स्वरूप प्रस्तुत किया है। लेखक की लेखनी गुरु परम्परा का सम्यक् बोध देती है। ध्यान पुस्तक का अंशरूप लेख रुचिकर एवं ज्ञानपूरित है। आगे भी आपकी लेखनी अनेक विषयों का सम्यक् बोध कराती रहे, ऐसी भावना है।

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार 27

पाँचवाँ प्रवचन

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

आत्मा के विकारी भाव रूप रागादि भाव हैं, जो प्रगट रूप से दुख देनेवाले हैं; उनका ही सेवन करता है और उनसे स्वयं को सुखी मानता है ह्न यह इस अगृहीत मिथ्यादृष्टि जीव की आस्रव तत्त्व संबंधी भूल है।

अपने सुखस्वरूप रूप को भूलकर शुभबंध के फल से प्रीति करता है और अशुभबंध के फल में अप्रीति करता है। यह इसकी बंधतत्त्व के संबंध में की गई भूल है।

जो ज्ञान-वैराग्य आत्मा का हित करनेवाले हैं; उन्हें स्वयं को कष्ट देनेवाला मानता है। यह इसकी संवर तत्त्व संबंधी भूल है।

स्वयं की शक्ति को भूलकर, खोकर इच्छाओं को न रोकना ही इसकी निर्जरा तत्त्व के संबंध में की गई भूल है। और अन्त में आकुलता रहित जो कल्याण स्वरूप मुक्ति है, उसे नहीं जानना ही मोक्षतत्त्व संबंधी भूल है।

उक्त भूलों सहित जो भी ज्ञान-श्रद्धान है, वे ही दुखदायी अगृहीत मिथ्याज्ञान और अगृहीत मिथ्याश्रद्धान है।

इन अगृहीत मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ होनेवाली पंचेन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति ही अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

इसप्रकार यह वर्णन अगृहीत मिथ्यादर्शन, अगृहीत मिथ्याज्ञान और अगृहीत मिथ्याचारित्र का हुआ। अब इसके बाद गृहीत मिथ्यादर्शन, गृहीत मिथ्याज्ञान और गृहीत मिथ्याचारित्र का वर्णन करते हैं।

अनादिकालीन अगृहीत मिथ्यात्व के जोर से शरीर और स्त्री-पुत्रादि संयोगों में एकत्व-ममत्व और रागादि भावों में सुखबुद्धि, उपादेयबुद्धि इतनी गहराई तक समाहित है कि अनेक विपरीत प्रसंगों के उपस्थित होने पर भी नहीं टूटती।

अपने पुत्र के दुर्व्यवहार से नाराज होकर सेठजी ने समाचार-पत्रों में छपवा दिया कि मेरे पुत्र से अब मेरा कोई संबंध नहीं है। उससे जो भी व्यक्ति लेन-देन करेगा, उसकी जिम्मेदारी उसी की है, मेरी नहीं है।

फिर भी वे समय-समय पर इस बात पर दु:ख प्रगट करते रहते हैं। कहते हैं कि मुझे इस बात का बहुत दु:ख है कि मेरी संतान नालायक है।

जब उन्हें यह याद दिलाया जाता है कि आपने तो समाचार-पत्रों में निकाल दिया कि उससे अब आपका कोई संबंध नहीं है; तब वे कहते हैं कि अखबार में निकाल देने से क्या होता है, आखिर है तो वह मेरा बेटा ही। यह एकत्वबुद्धि की पकड़ है, इतनी मजबूत है कि टूटती ही नहीं।

अरे, भाई ! यह पकड़ तो तत्त्वाभ्यास से टूटती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। परपदार्थों और रागादि विकारीभावों में अनादिकालीन एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्वबुद्धिरूप अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र ही वास्तविक रोग है, संसार का मूलकारण है।●

छठवाँ प्रवचन

पण्डित टोडरमलजी द्वारा लिखित मोक्षमार्गप्रकाशक नामक ग्रन्थराज में प्रतिपादित विषयवस्तु की चर्चा चल रही है। इस ग्रन्थ का आधार कोई एक ग्रन्थ न होकर सम्पूर्ण जैन वाङ्मय है। यह सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को अपने में समेट लेने का प्रयास था; पर खेद है यह ग्रन्थराज पूर्ण न हो सका।

यदि यह पूर्ण हो गया होता तो यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि सम्पूर्ण जैन वाङ्मय कहीं एक जगह सरल, सुबोध जनभाषा में देखना हो तो मोक्षमार्गप्रकाशक को देख लीजिये।

अपूर्ण होने पर भी यह अपनी अपूर्वता के लिए प्रसिद्ध है।

इसके चौथे अधिकार में समागत विषयवस्तु की चर्चा चल रही है; जिसमें अभीतक अगृहीत मिथ्यादर्शन का स्वरूप स्पष्ट किया जा चुका है। अब अगृहीत मिथ्याज्ञान और अगृहीत मिथ्याचारित्र की चर्चा करना है।

यद्यपि छहढाला में समागत पंक्तियों में समागत अगृहीत मिथ्याज्ञान और अगृहीत मिथ्याचारित्र की सामान्य बात हुई है; तथापि उसकी जो विशेष चर्चा मोक्षमार्गप्रकाशक में है; उसे अब स्पष्ट करना है।

अगृहीत मिथ्यादर्शन और अगृहीत मिथ्याज्ञान में मात्र श्रद्धान और ज्ञान का ही अन्तर है; क्योंकि देहादि को अपना मानना अगृहीत मिथ्यादर्शन और देहादि को ही अपना जानना अगृहीत मिथ्याज्ञान है। मुक्तिमार्ग में प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वार्थों का विपरीत श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है और उन्हीं का विपरीत ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। इसलिए जो विवेचन अगृहीत मिथ्यादर्शन के बारे में किया गया है; उसको अगृहीत मिथ्याज्ञान पर भी घटित कर लेना चाहिए।

जिन लोगों को जानने और मानने में अथवा ज्ञान और श्रद्धान में अन्तर दिखाई नहीं देता; उन्हें तो ऐसा प्रश्न उठेगा ही कि इनमें क्या अन्तर है ?

ध्यान रहे यहाँ जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्वों के संदर्भ में सम्यक् एवं मिथ्या ज्ञान-श्रद्धान से ही सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नाम पाता है; अन्य अप्रयोजनभूत लौकिक जानकारी से कोई लेना-देना नहीं है। सम्यग्दृष्टि का सभी ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और मिथ्यादृष्टि का सभी ज्ञान मिथ्याज्ञान है; क्योंकि ज्ञान में सम्यक्पना सम्यक्श्रद्धान से आता है।

पुत्रादि या किसी अन्य व्यक्ति के संकट में साथ न देने पर यदि कोई कहता है कि आज मैंने जान लिया है कि कोई किसी का नहीं है।

यद्यपि उसका यह कथन तात्त्विक दृष्टि से सत्य ही है; तथापि वह द्वेष से कह रहा है; अत: वह सम्यग्ज्ञानी नही है।

पुत्रादि की जरा-सी अनुकूलता दिख जाने पर उसे यह कहते भी देर नहीं लगेगी कि आखिर समय पर तो अपने लोग ही काम आते हैं। कहा तो यहाँ तक जाता है कि ह्न

'खोटा बेटा, खोटा दाम, समय पड़े पर आवे काम।'

सम्यग्ज्ञानी भी यही कहता है कि कोई किसी का नहीं है, तथापि उसका यह निर्णय तत्त्वज्ञान के आधार पर लिया गया अकाट्य निर्णय है; अत: उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

प्रयोजनभूत तत्त्व जो अपना त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा, उसमें एकत्वबुद्धि पूर्वक यह जानना कि 'यह मैं ही हूँ' ह्न इसका नाम सम्यग्ज्ञान है एवं अपने आत्मा को छोड़कर अन्य पदार्थों में एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्वबुद्धि पूर्वक यह जानना कि 'ये मैं हूँ' या 'ये मेरे हैं' 'मैं इनका कर्ता–भोक्ता हूँ' ह्न इसका नाम ही अगृहीत मिथ्याज्ञान है। ऐसे मिथ्यादर्शन एवं मिथ्याज्ञान सहित जो राग–द्वेषमय प्रवृत्ति पाई जाती है, पंचेन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति पाई जाती है; वह अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्माओं में पाई जानेवाली विषयों की प्रवृत्ति मिथ्या–चारित्र नहीं कहलाती; उसे असंयम कहते हैं।

अपने भगवान आत्मा को छोड़कर कोई भी पदार्थ न हमें इष्ट है और न अनिष्ट है, न कोई सुखदायक है और न कोई दुखदायक है; वे तो मात्र हमारे ज्ञान के ज्ञेय हैं, मात्र जानने में आते हैं। जो भी परपदार्थ जानने में आते हैं, उनमें से हम कुछ को इष्ट जानकर, इष्ट मानकर, उनसे राग करने लगते हैं और कुछ पदार्थों को अनिष्ट जानकर, अनिष्ट मानकर उनसे द्वेष करने लगते हैं। उन परपदाथों को इष्टानिष्ट मानना अगृहीत मिथ्यादर्शन है, इष्टानिष्ट जानना अगृहीत मिथ्याज्ञान है और इष्टनिष्ट जान–मान कर उनसे राग–द्वेष करना, पंचेन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

जब हम किसी वस्तु को इष्ट मानने लगते हैं या किसी व्यक्ति को मित्र मानने लगते हैं तो उनसे सहज ही राग हो जाता है और जब हम किसी वस्तु को अनिष्ट मानने लगते हैं या किसी व्यक्ति को शत्रु मानने लगते हैं तो उनसे सहज ही द्वेष हो जाता है। विपरीत मान्यतापूर्वक किये गये ये राग–द्वेष ही अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

मिथ्यात्व के साथ रहनेवाली यह राग–द्वेष की परम्परा असीमित विस्तारवाली है; इसलिए अनन्त है, अनन्तानुबंधी है।

जिन परपदार्थों को हम इष्ट जानते–मानते हैं, उनसे राग करते हैं और उनसे द्वेष करनेवालों से द्वेष करने लगते हैं अथवा उनसे राग करनेवालों से राग करने लगते हैं। इसीप्रकार जिन परपदार्थों को हम अनिष्ट जानते–मानते हैं, उनसे द्वेष करते हैं और उनसे द्वेष करनेवालों से राग करने लगते हैं अथवा उनसे राग करनेवालों से द्वेष करने लगते हैं। इसप्रकार की परम्परा का कोई अन्त नहीं है; अत: यह अनंत है, अनंतानुबंधी है।

यह बात तो लोक में प्रसिद्ध ही है कि 'शत्रु का शत्रु मित्र होता है और मित्र का शत्रु शत्रु होता है। इसीप्रकार मित्र का मित्र मित्र होता है और शत्रु का मित्र शत्रु होता है। इसको नीति या राजनीति माननेवाले लोग अनंतानुबंधी कषायवाले लोग हैं; क्योंकि इस परम्परा को आप चाहे जितना बढा सकते हैं। इसके अनुसार तो न केवल मित्र, वरन् शत्रु भी अनंत हो जाते हैं। जिसके मित्र व शत्रु अनंत हों, उसकी आकुलता भी अनंत ही होगी। ऐसे लोग अनंतदुखी लोग हैं।

'यह राग–द्वेष की परम्परा अगृहीत मिथ्यादृष्टियों में किसप्रकार प्रवर्तती है' ह्न इसे स्पष्ट करते हुए पण्डितजी लिखते हैं ह्न

''प्रथम तो इस जीव को पर्याय में अहंबुद्धि है सो अपने को और शरीर को एक जानकर प्रवर्तता है। तथा इस शरीर में अपने को सुहाये ऐसी इष्ट अवस्था होती है, उसमें राग करता है; अपने को न सुहाये ऐसी अनिष्ट अवस्था होती है, उसमें द्वेष करता है। तथा शरीर की इष्ट अवस्था के कारणभूत बाह्य पदार्थों में तो राग करता है और उसके घातकों में द्वेष करता है। तथा शरीर की अनिष्ट अवस्था के कारणभूत बाह्य पदार्थों में तो द्वेष करता है और उनके घातकों में राग करता है।

तथा इनमें जिन बाह्य पदार्थों से राग करता है, उनके कारणभूत अन्य पदार्थों में राग करता है और उनके घातकों में द्वेष करता है। तथा जिन बाह्य पदार्थों से द्वेष करता है, उनके कारणभूत अन्य पदार्थों में द्वेष करता है और उनके घातकों में राग करता है। तथा इनमें भी जिनसे राग करता है, उनके कारण व घातक अन्य पदार्थों में राग–द्वेष करता है। तथा जिनसे द्वेष है, उनके कारण व घातक अन्य पदार्थों में द्वेष व राग करता है।

इसीप्रकार राग–द्वेष की परम्परा प्रवर्तती है।

तथा कितने ही बाह्य पदार्थ शरीर की अवस्था के कारण नहीं है, उनमें भी राग–द्वेष करता है। जैसे ह्न गाय आदि को बच्चों से कुछ शरीर का इष्ट नहीं होता, तथापि वहाँ राग करते हैं और कुत्ते आदि को बिल्ली आदि से कुछ शरीर का अनिष्ट नहीं होता, तथापि वहाँ द्वेष करते हैं।

तथा कितने ही वर्ण, गंध, शब्दादिक के अवलोकनादि से शरीर का इष्ट नहीं होता, तथापि उनमें राग करता है। कितने ही वर्णादिक के अवलोकनादिक से शरीर को अनिष्ट नहीं होता, तथापि उनमें द्वेष करता है। ह्न इसप्रकार भिन्न बाह्य पदार्थों में राग–द्वेष होता है।

तथा इनमें भी जिनसे राग करता है, उनके कारण और घातक अन्य पदार्थों में राग व द्वेष करता है। और जिनसे द्वेष करता है, उनके कारण और घातक अन्य पदार्थों में द्वेष व राग करता है।

इसीप्रकार यहाँ भी राग–द्वेष की परम्परा प्रवर्तती है।''

अगृहीत मिथ्यादृष्टियों में पाई जानेवाली यह राग–द्वेष की अनंत परम्परा सैनी पंचेन्द्रिय मनुष्यों पर घटित करके स्पष्ट की है; क्योंकि एकेन्द्रियादि के तो मन के अभाव में उपयोग इतना लम्बाना संभव ही नहीं होता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे अगृहीत मिथ्यादृष्टि नहीं हैं। अगृहीत मिथ्यादृष्टियों में तो वे हैं ही, पर उनकी कषायों की अनंतता केवलज्ञानगम्य है। **(क्रमश:)**

2 मई 2009, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

पाठशाला पुर्नजीवित

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन परिसर में डॉ. शुद्धात्मप्रभाजी टड़ैया, मुम्बई की प्रेरणा एवं उन्हीं की अध्यक्षता में बहुत समय पूर्व बंद हुई वीतराग-विज्ञान महिला पाठशाला श्रीमती कमलाजी भारिल्ल द्वारा पुन: प्रारंभ की गई, जो कि प्रतिदिन रात्रि में 6:30 से 7:30 तक संचालित की जा रही है।

उक्त पाठशाला में भगवान महावीर जयंती के अवसर पर महिला सभा का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्रीमती कमलाजी भारिल्ल ने की, सभा में अनेक महिलाओं ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये। सभा का संचालन श्रीमती वर्षा जैन ने किया। **ह्न श्रीमती सुशीला जैन**

पण्डित श्री दिनेशभाई के शिविर

पण्डित श्री दिनेशभाई के शिविर 21 से 25 मई, 09 तक देवलाली एवं 3 से 7 जून, 09 तक नवागढ़ (महा.) में चलेंगे; जिनमें वे प्रतिदिन 6-6 घंटे तक कक्षा लेंगे व देवलाली में गुणस्थान और नवागढ़ में जैन सिद्धान्त विषय को स्पष्ट करेंगे।

आपके पधारने की सूचना निम्नांकित पतों पर देवें ह्न

1. पण्डित दिनेशभाई शहा, 157/9 निर्मला निवास, सायन (पू.), मुम्बई, फोन नं. ह्न 24073581

2. पू. श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, कहान नगर, बेलतगांव रास्ता, लाम रोड, देवलाली, जिला-नासिक (महा.)

आचार्य धरसेन विद्यालय में प्रवेश पत्र भेजें

कोटा : आपको जानकर अति प्रसन्नता होगी तथा हमें सूचित करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है कि मुमुक्षुओं की अग्रणीय, आध्यात्मिक, औद्योगिक एवं शिक्षा की काशी शैक्षणिक नगरी कोटा में छात्रों के उज्जवल एवं सर्वांगीण विकास हेतु संस्कारों से परिप्लावित आचार्य धरसेन दिगम्बर जैन सिद्धान्त विद्यालय का शुभारंभ पिछले वर्ष हो चुका है। उसी क्रम में जो छात्र इस संस्थान में प्रवेश पाना चाहते हैं वह 5 जून 2009 तक फार्म भरकर आवश्यक जानकारी के साथ भिजवाएं। प्रवेश इच्छुक छात्र **कोलारस (म.प्र.)** में होने वाले शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में पधारकर प्रशिक्षण अवश्य लें; ताकि आपके चयन में सुविधा हो सके। 10 जून 2009 से 15 जून 2009 तक कोटा में होने वाले शिक्षण शिविर में अवश्य ही पधारें। यह शिविर केवल विद्यालय में प्रवेश के इच्छुक छात्रों के लिये ही होगा। शिविर पश्चात् साक्षात्कार होगा, जिसमें उत्तीर्ण होने पर ही प्रवेश दिया जावेगा।

सम्पर्क - आचार्य धरसेन विद्यालय, द्वारा बजाज पैलेस, नगरपरिषद कॉलनी छावनी, कोटा, (राज.) मो. नं. 09660625515 (विजयजी बोरालकर) 09828063891 (रतनचंदजी शास्त्री)

अधिवेशन में अनेक कार्यक्रम

चंवलेश्वर (भीलवाड़ा) : अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन कोटा संभाग की ओर से ने महावीर जयंती की पूर्व संध्या पर दिनांक 5 अप्रैल, 09 को मेवाड़ की सुरम्य पहाड़ियों के मध्य स्थित अतिशय क्षेत्र चंवलेश्वर पार्श्वनाथ में एक विशाल अधिवेशन का आयोजन रखा गया, जिसमें लगभग 1000 युवा फैडरेशन के लोगों ने भाग लिया।

कार्यक्रम प्रात:काल नित्य नियम पूजन-विधान से प्रारम्भ हुआ। दोपहर में पण्डित संजयजी हरसोरा रावतभाटा एवं पण्डित प्रवीणजी शास्त्री जयपुर के मांगलिक प्रवचन हुये।

श्री प्रेमचन्दजी बजाज को प्रभावना शिरोमणि ह्न

अधिवेशन के प्रसंग पर अ. भा. दि. जैन युवा फैडरेशन कोटा संभाग ने मुमुक्षु आश्रम ट्रस्ट कोटा, कुन्दकुन्द कहान छात्रावास एवं आचार्य धरसेन सिद्धान्त महाविद्यालय के संस्थापक **श्री प्रेमचंदजी बजाज को प्रभावना शिरोमणि** की उपाधि से सम्मानित किया। इस अवसर पर आयोजित सभा की अध्यक्षता श्री तिलकजी चौधरी किशनगढ़ ने की।

सभा में जीवेश जैन, अखिलेश जैन, कु.अक्षता जैन, पण्डित विजयजी शास्त्री, पण्डित जयकुमारजी, श्री विनोदजी सेठिया, श्री तेजमलजी पटवारी, श्री मदनलालजी एडवोकेट आदि अनेक लोगों ने अपने विचार प्रगट किये। मंगलाचरण समकित मोदी ने किया।

विचार गोष्ठी ह्न

इसी प्रसंग पर **भगवान महावीर के सिद्धान्त ह्न आधुनिक संदर्भ में** विषय पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी में पण्डित जयकुमारजी, पण्डित प्रवीणजी शास्त्री, पण्डित विनयजी शास्त्री, पण्डित धर्मचंदजी, पण्डित सुनीलकुमारजी आदि ने अपने विचार प्रगट किये।

अधिवेशन के इस कार्यक्रम में सभी को तीन तीर्थक्षेत्रों की यात्रा का लाभ भी मिला। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन पण्डित रतनजी चौधरी ने किया। आयोजन में लगभग 20-25 नगरों से साधर्मी पधारे।

ह्न तेजमल पटवारी, कोटा संभाग प्रभारी

प्रकाशन तिथि : 28 अप्रैल 2009

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127